वैदिक वङ्मय में धर्म का स्वरूप

शिवदेव आर्य
गुरुकुल पौन्धा, देहरादून
मो.-8810005096

वैदिक संस्कृति में जगत् के धारण-तत्त्वका नाम धर्म है - **'धारणाद्धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः**(महाभारत) । अभ्युदय-निःश्रेयसप्रद-तत्व जगत् को धारण करने वाले माने गये हैं। लौकिक और पारलौकिक उत्कर्ष तथा आवागमन के बन्धन से निवृत्तिरूप-मोक्ष के ज्ञानादि उपायों की समुपलब्धि अभ्युदय है। अभिप्राय यह है कि **'प्रेय'** की उपलब्धि और श्रेयकी ओर उन्मुख होना-यही अभ्युदय है। देहेन्द्रियादि अनात्मभावों से विविक्त-गुणमयभावों से अतीत आत्मस्थिति निःश्रेयस है।

'धृ धारणपोषणयोः' धातु से उणादि मन् प्रत्यय करने पर सिद्ध होता है। सुख प्राप्ति के लिए जिसको धारण किया जाता है या सेवन किया जाता है। वह धर्म कहलाता है।**'धरति लोकाऽनेन, धरति लोकं वा', धरति विश्वम् इति , धरति लोकान् ध्रियते वा जनैरिति (अमरकोष-1.6.3) ।'यज्ञे सर्वं प्रतिष्ठितं तस्माद्यज्ञं परमं वदन्ति' (महानारायणोपनिषद्)**

इज्याध्ययनदानानि तपः सत्यं क्षमा दमः।
अलोभ इति मार्गोऽयं धर्मस्याष्टविधः स्मृतः।।
(महा. वनपर्व 2.75)

-आदि स्थलों में यज्ञादि को साध्य धर्म माना गया है। साथ ही **'सर्वागमानाचारः प्रथमं परिकल्पते। आचारप्रभवा धर्मो धर्मस्य प्रभुरच्युतः।' (विष्णुसहस्त्रनाम-136), ये च वेदविदां विप्रा ये चाध्यात्मविदो जनाः। ते वदन्ति महात्मानं कृष्णं धर्मसनातनम्।।(महाभारत),'संस्कृद्विभातो ह्येवैष धर्मो धातुस्वभावतः'(माण्डूक्यकारिका-4.58), 'एवं धर्मान् पृथक् पश्यंस्तानेवानुविधावति' (कठोपनिषद्-2.1.14)** आदि स्थलों मे सिद्ध धर्म आत्मा का प्रति पादन किया गया है।

अलौकिक श्रेयःसाधन को **'धम'** कहते हैं। उससे प्राप्त परमात्मा भी धर्म कहा जाता है। वैशेषिक दर्शन के अनुसार जिससे अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि हो, वह धर्म है - **'यतोऽभ्युदयनिः श्रेयससिद्धिः स धर्मः' (वैशेषिक दर्शन 1.2)**। वैषेषिक दर्शन का यह कथन है कि - 'जिससे अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि हो, वह धर्म है। ठीक उसी प्रकार है, जिस प्रकार कि - जिससे तुष्टि, पुष्टि और श्रुन्निवृत्ति हो, वह भोजन है। जिससे रोग की निवृत्ति और स्वास्थ्य की अभिव्यक्ति हो, वह औषधि है। जिससे उल्लास और आनन्द की अभिव्यक्ति हो, वह जीवन है। इसी प्रकार **'चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः'(पूर्वमीमांसा 1.12)**, यह लक्षण साधन और सिद्ध दोनों धर्मो में चरितार्थ है।

'वेदप्रणिहितो धर्मोह्यधर्मस्तद्विपर्ययः (भागवत 6.1.40) आदि का वचन धर्म की साक्षात् परिभाषा करने वाले हैं। उक्त वचन के अनुसार स्वाधिकारसम्पदा के अनुरूप **'अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः' (मैत्रायण्युपनिषत् 6.36), 'आत्म वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः' (बृहदारण्यक.2.4.5)** आदि विधि और विधिछायरूप प्रेरक वचनसिद्ध अभ्युदय और निःश्रेयसरूप अर्थप्रद तत्त्व **'धम'** है। अभिप्राय यह है कि प्रमाणान्तर से अनधिगत अतीन्द्रिय अर्थ के ज्ञापक और उनमें साध्य-साधन भाव के निर्धारक तथा स्वाधिकारानुरूप उनके प्रति प्रेरक वेदादि शास्त्रवचन सिद्ध तत्त्व '**धर्म**' है। अर्थात् वेदादिशास्त्रैकसमधिगम्य अभ्युदय-**निःश्रयसप्रद तत्त्व 'धर्म'** है।

श्रुतियों तथा मन्वादि धर्मशास्त्रों ने मनुष्यों के कल्याण के लिए धृति (संतोष), क्षमा, दम (मनः स्थैर्य), अस्तेय (न्यायपूर्वक धनार्जन), शौच (देहशोधन), इन्द्रियनिग्रह, धी (शास्त्रादिपरिज्ञान), विद्या (आत्मज्ञान), सत्य (यथार्थ भाषण) और अक्रोध इन दशविध धर्मो का उपदेश किया है। इनके सेवन से मनुष्य मोक्षलाभ करता है-

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।

(मनुस्मृति-6.92)

दश लक्षणानि धर्मस्य ये विप्राः समधीयते।
अधीत्यचानुवर्तन्ते ते यान्ति परमां गतिम्।।

(मनुस्मृति-6.93)

शास्त्रों के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि धर्म दो प्रकार के होते है – प्रवृत्तिपरक और निवृत्तिपरक। प्रवृत्तिपरक धर्म यज्ञ, दान और तप आदि हैं। निवृत्तिपरक धम भगवत् भक्ति ब्रह्मात्मविचार और ब्रह्मात्मविज्ञानादि हैं। प्रवृत्तिलक्षण धर्म का फल लौकिक-पारलौकिक उत्कर्षरूप अभ्युदय है। निवृत्ति है। निःश्रेयस के साधनों को भी कहीं -कहीं अभ्युद य माना गया है। पूर्वमीमांसा के अनुसार लौकिक उत्कर्ष अभ्युदय है और मरणोपरान्त स्वर्गोपलब्धि (सुखोत्कर्ष की प्राप्ति) निःश्रेयस है। प्रवृत्तिपरक सामान्यधर्म धृति, क्षमा, दम, शम और सत्यादि निवृत्तिमार्गियों क भी उपकारक हैं-

सुखाभ्युदयिकं चैव नैःश्रेयसिकमेव च।
प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कर्म वैदिकम्।।
इह चामुत्र वा काम्यं प्रवृत्तं कर्म कीर्त्यते।
निष्कामं ज्ञानपूर्वं तु निवृत्तमुपदिश्यते।।

(मनु.-12.88-89)

ऋषि दयानन्द जी आर्योद्देश्यरत्नमाला में धर्म का स्वरूप बतलाते है कि **''जिसका स्वरूप ईश्वर की आज्ञा का यथावत पालन पक्षपात रहित न्याय व सर्व हित करना है जो कि प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सुपरीक्षित और वेदोक्त होने से सब मनुष्यों के लिए एक और मानने योग्य है, उसे धर्म कहते है।''**

वास्तव में जब धर्म का स्वरूप ही भ्रान्त हो जाएगा तो धर्म का अनुष्ठान सर्वथा व्यर्थ है। क्योकि मनुष्यत्व व पशुत्व में एक ही गुण भेद होता है और वह है धर्म। नीतिकार कहते है

''आहार निन्द्राभयमैथुनञ्च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिकोविशेषो धर्मेण हीनाः पशुभिस्समानाः।।''

मनुष्य आहार, निन्द्रा, भय, मैथुन इस सभी में पशुओं के समान है केवल धर्म ही भेद है। जिसके कारण मनुष्य को यह अमूल्य देह पुरुषार्थ चतुष्ट्य की साधना के लिए प्राप्त हुआ है। आज इस मशीनि युग में केवल मात्र धन और साधनों के भ्रम जाल में फंसकर मनुष्य धर्म को कोसों दूर छोड़ चुका है।

'मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे', 'अग्ने व्रतेपते व्रतं चरिष्यामि' व्रतेन दीक्षामाप्नोति' आदि मन्त्रों में मनुष्य को क्या धारण करना चाहिए व क्या त्यागना चाहिए। इसका भली भाँति परिशीलन है। इसलिए अपनी मेधा से विवेक कर सब मनुष्य यह विदित कर ले कि मेरा धर्म क्या है और अधर्म क्या है। क्योंकि जो सत्य धर्म की रक्षा करता है तो धर्म भी उसकी रक्षा करता है-

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत्।।

और उस धर्म के तीन स्कन्ध बताये है – **'धर्मस्य त्रयो स्कन्धाः यज्ञोऽध्ययनं दानं चेति'** यज्ञ के कारण शरीर के विकारों की पूर्ति होती है और दान से स्थूल शरीर की परिपूर्ति होती है। इसलिए ये ही धर्म साधना है। अन्यत्र **'अहिंसा परमो धर्मः'** यह कहा गया है। सर्वथा सर्वदा सब प्राणीमात्र के साथ वैर त्याग करना अंहिसा कहाती है। और उसका पालन करने वाला धार्मिक कहाता है। महाभारतकार ने तो सभी धर्मो का सार कहा है कि-

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वं चाप्यवधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।।

अर्थात् जो अपने को प्रतिकूल लगे वह दूसरों के साथ न करना ही धर्म कहलाता है तो विचार कीजिए कि हमारा क्या धर्म है और क्या होना चाहिए?